संस्थापक-स्व० लोककवि रामचरन गुप्त

तेवरीपक्ष

(अनियतकालीन साहित्यिक आयोजन)

वर्ष—18 मूल्य—5/- अंक एक (जनवरी से जून 2000)

17

लोककवि रामचरन गुप्त एवम् डॉ० रवीन्द्र 'भ्रमर' स्मृति अंक

परामर्श—
डॉ० गोपाल बाबू शर्मा

सम्पादन-
रमेशराज

आभार—
दर्शन बेजार, अशोक तिवारी, श्याम बेबस

Scanned by CamScanner

17

—दर्शन बेजार

जिन्दगी को जिन्दगी खाने लगी ।
हर नजर अपनों से घबराने लगी ।।
बस्तियों से उठ रही चीखें पुकार,
रूह सबकी आज थर्राने लगी है ।
भीड़ चोरों की अदालत में पहुँचकर,
अब नये कानून समझाने लगी है ।
रौशनी तम से पराजित हो चुकी है,
हर तरफ काली घटा छाने लगी है ।
चूड़ियां तोड़े हुए बेजार बेबस,
जिन्दगी बेवा नजर आने लगी है ।

तेवरियां

- सूर्य कुमार पाण्डेय

आज अंधे हुए नयनधारी,
चुन गए वे, हुए सदनधारी ।
पूंछ तक में जहर भरा इन के,
दोमुँहे हैं यहाँ के फनधारी ।
हर विधायक को जान का खतरा,
पीछे चलते हैं दो–दो गनधारी ।
ये वो, रखते हैं जेब धोती में,
कौन इन से अधिक वजनधारी ।
कौन–सा शौक जो नहीं इन को,
गद्दियों पर चढ़े व्यसनधारी ।

अनन्त राम मिश्र अनन्त

कर रही हिंसा हताहत, क्या करें ?
खो गये गांधी – तथागत क्या करें ?
जीतते निर्वाचनों में दस्यु, अब,
हारते शिक्षक, सुजन–मत क्या करें ?
दासता संस्कार 'सन्' के दे गयी,
विक्रमी भूले 'स्व संवत' क्या करें ?
हम नकल में निज असल भी खो रहे,
आज गर्वित भाल अवनत क्या करें ?
जो हमारे योग पर लट्टू हुए,
हम उन्ही के भोग में रत, क्या करें ?

तेवरीपक्ष–17

पृ० कावर

Scanned by CamScanner

सम्पादकीय

हिन्दी गजल : सवाल सार्थकता का ?

गजल अपनी सारी शर्तों, (कथ्य या आतमरूप–प्रगयात्मकता, तथा शिल्प रूप, बहर, मतला, मक्ता, अन्त्यानुप्रासिक व्यवस्था में रदीफ काफिए अन्य तकनीकीय पक्ष जैसे शे'रों की निश्चित संख्या, हर शे'र का कथ्य अपने आप में पूर्णता ग्रहण किये हुए आदि–आदि) के साथ ही लिखी जानी चाहिए। फिर चाह उसका सृजन हिन्दी, पंजाबी गुजराती, बंगाली या उर्दू में हो, लेकिन पुकारी या कही जानी गजल ही चाहिए। गजल अपनी सारी शर्तों को पूर्ण किये विना अपने अस्तित्वत या चरित्र की रक्षा कैसे कर पायेगी या किस तरह गजल कहलाएगी ? बहस का मुख्य विन्दु यही होना चाहिए। किसी बस्तु को परम्परा से काटकर उसका मूल्यांकन उसी परम्परा में करना अपरिपक्व मस्तिष्कों की उपज के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। होली के अवसर पर दीप जलाकर, लक्ष्मी का पूजन एवं पटाखे छोड़कर क्या हम होली की परम्परा को जीवित रख सकते हैं ? या ऐसी परम्परा को 'होली' नाम से पुकार सकते हैं ? जन-समूह तो नेताओं की सभाओं में भी होता है। वहाँ खाने पीने से लेकर तरह-तरह के मनोरंजन की दुकानें भी लगाई जाती हैं, क्या इस प्रकार से एक राजनीति मंच को किसी मेले के रूप में पहचाना जा सकता है। हर स्थिति में एक विवेकशील मनुष्य इसका उत्तर 'न' में ही होगा। अपनी परम्परा, अपनी शर्तों से कटकर कोई वस्तु उसी परम्परा के साथ जीवित या सार्थक रह ही नहीं सकती है।

लेकिन गजल के साथ यह कमाल या चमत्कार कम से कम हिन्दी में तो हो ही रहा है। 'प्रसगवश' के समकालीन हिन्दी गजल विशेषांक फर–१९८४ में डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी का आलेख "आधुनिक हिन्दी गजल : रचना और विचार" गजल को गजल की परम्परा या शर्तों से काटकर हिन्दी में गजल कहलवाने अथवा

मनवाने का एक ऐसा मायाजाल है जो किसी सार्थक हल की ओर पहुँचाता तो कम है, भटकता ज्यादा है। डॉ॰ सत्यप्रेमी अपने मत के पक्ष में विभिन्न विद्वानों के अभिमत प्रस्तुत करते हुए यह कहकर भले ही आश्वस्त होलें कि गजल की विषय वस्तु को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं और यह मतभेद ही गजल के उर्दू गजल और हिन्दी गजल नामकरण की पृष्ठभूमि भी निर्मित करता है'' लेकिन यह आश्वस्ति दीर्घकालिक या स्थायी इसलिए नहीं है क्योंकि उन्हीं के अनुसार विद्वानों में मतभेद है और हमारे हिसाब से आगे भी इसलिए रहेंगे क्योंकि इसका हम सबके पास न तो कोई शास्त्रीय हल है और न हम किसी शास्त्रीय या वैज्ञानिक तरीके से इस मुद्दे को हल करना चाहते हैं। नीम को बबूल या बबूल को नीम मनवाने की यह जोर-जबरदस्ती मतभेदों को नहीं तो किसको जन्म देगी ?

उक्त आलेख पर अगर हम (विभिन्न विद्वानों के अभिमतों को डॉ॰ सत्य प्रेमी के मतों से मिलाते हुए) क्रमश: अध्ययन, चिन्तन मनन करें तो जिन मतभेदों की काली छाया से डॉ॰ सत्यप्रेमी शुरू से ही आतंकित होते हैं वह काली छाया इस आलेख के अन्त में भी ज्यों की त्यों मौजूद रहती है।

डॉ॰ सत्य प्रेमी फरमाते हैं कि—''एस॰एन॰ अहमद फारुख ने अपने लेख 'हिन्दी उर्दू गजलों का स्वर (युगधर्म, दीपावली विशेषांक -१९७८) में लिखा है कि गजल की यह विधा जब हिन्दी साहित्य में प्रवेश करती है⋯तो इसके एक-एक शब्द से देश भक्ति, इन्सानी दर्द और कौमी बेदारी (राष्ट्रीय चेतना) टपकती-सी प्रतीत होती है।'' अब डॉ॰ सत्य प्रेमी और एस॰ एन॰ अहमद फारुख साहब को यह तो कोई भाषा वैज्ञानिक ही समझा सकता है कि उर्दू और हिन्दी दो अलग-अलग भाषाएँ न होकर उर्दू, हिन्दी की एक बोलीमात्र या हिन्दी ही है और इस भाषा वैज्ञानिक सत्य या वास्तविकता के कारण हिन्दी और उर्दू की यह सारी बहस ही अपने-आप बेमानी या खारिज हो जाती हैं। बात आती है गजल के हिन्दी में इस तरह प्रवेश करने या कराने की, तो फारुख साहब से यह तो पूछा ही जा सकता है कि क्या वे गजल की तर्ज पर ही हज्ल को भी इसी तरह, हिन्दी में प्रवेश दिला सकते हैं जिस तरह उन्होंने गजल को हिन्दी में साकी शराब मयखाने से मुक्ति दिलायी है। खैर................ इस तरह हज्ल भी हिन्दी में आकर अपनी अश्लीलता से कुछ तो मुक्ति पायेगी। पर सोचना यह है कि ऐसे में हज्ल कैसे हज्ल कहलायेगी ?

Scanned by CamScanner

हिन्दी और उर्दू के छद्म भेद पर टिका यह चिन्तन, निष्कर्ष के किसी पड़ाव तक इसलिये नहीं ले जा सकता है क्योंकि इसकी सारी की सारी प्रक्रिया अपाहिज होने के साथ-साथ जिधर मंजिल है या होनी चाहिए ठीक उसको विपरीत दिशा में हाथ पैर पटक रही है।

इसी आलेख में डॉ० सत्य प्रेमी, डॉ० जानकी प्रसाद के विचारों से इस तथ्य की पुष्टि करने की कोशिश करते हैं कि वर्तमान समय में उर्दू भाषा का व्यवहार करने वाली जाति अखण्ड भारत का हिस्सा बन गयी है। ऐसी स्थिति में उर्दू भाषा के शब्द भी हिन्दी भाषा में अपनी मूल प्रकृति खोकर प्रयुक्त होते हैं तो यह एक स्वभाविक प्रक्रिया है। —गजल को हिन्दी कविता में उर्दू फारसी कविता की समीपता तथा भारतीय और इस्लाम संस्कृतियों के साहचर्य के संदर्भ में ग्रहण किया है। गजल का हिन्दी में आगमन एक साहित्यिक घटना ही नहीं है यह एक सांस्कृतिक घटना भी है।'' जब स्थिति यह है कि यह सांस्कृतिक मेल मिलाप अपना स्वभाविक प्रक्रिया को अपना रहा है, भाषा की दृष्टि से उर्दू और हिन्दी अभिन्न बनने की भरसक कोशिश कर रही है, तब गजल की दृष्टि से हिन्दी और उर्दू के भेद और क्यों गहराते जा रहे हैं। स्वभाविकता में पैदा की गयी यह अस्वाभाविकता मतभेदों को नहीं तो किसको जन्म देगी। गजल विभिन्न सांस्कृतिक एवं भाषिक मेल मिलाप जैसे अरबी-फारसी, उर्दू आदि के बीच गजल ही रही लेकिन हिन्दी के साथ तालमेल बिठाने में उसे ऐसी दिक्कतों या झगड़ों का सामना क्यों करना पड़ रहा है जैसेकि दिक्कतें या झगड़े धर्म के नाम पर सम्प्रदाय पैदा कर देते हैं या कर रहे हैं।

ऐसे मतभेदों को स्वीकारते हुए भी, इन्हीं मतभेदों को ऐसे आलेखों के माध्यम से और गहराते जाना कौन सी समझदारी है। जब सारा का सारा विवेचन कुतर्कों और अवैज्ञानिक सूझ बूझ के सहारे चल रहा है तो डॉ० सत्यप्रेमी का इस प्रकार खीज उठना कम से कम हमारी तो समझ से परे है कि ''इतना सब कुछ स्पष्ट हो जाने के पश्चात भी हिन्दी के स्वनामधन्य आलोचक-समीक्षक विद्वान हिन्दी गजल का आधुनिक युग की एक सशक्त विधा के रूप में स्वीकार नहीं कर पाते हैं और हिन्दी गजल की पर आये दिन प्रहार करते ही रहते हैं।'' जिसे डॉ० सत्य प्रेमी 'इतना कुछ 'स्पष्ट' कह रहे हैं उसमें 'थोड़ा ही

कुछ स्पष्ट हो जाता तो उन्हें यह 'सब कुछ' न कहना पड़ता और इस विरोध को अपने कुतर्कों के सहारे पूरी की पूरी भारतीय आलोचना/समीक्षा के माथे पर कलंक के टीके की तरह नहीं मढ़ना पड़ता? चाहे वे इस बात की लाख दुहाई दें कि— "वास्तविक मूल्यांकन के साहसिक तथा यथार्थपरक दृष्टिकोण के अभाव में प्रत्येक सही कृति समीक्षकों के दायरे में कविता के सामान्य महत्व से भी वंचित रही।' कबीर, भारतेन्दु, निराला, मुक्तिबोध, राजकमल चौधरी, धूमिल, दुष्यंत कुमार, अनिल कुमार तथा आज की कविता-अकविता के साथ यह दुर्घटना घटी।" इन सब बातों का उत्तर सिर्फ यह है कि यदि रचनाओं का धरातल ठोस, वास्तविक शास्त्रीय और सत्योन्मुखी है तो आज नहीं तो कल उनका जादू सर पर चढ़कर बोलेगा ही। उपरोक्त नाम घने झंझावातों के बावजूद आज भी प्रासंगिक हैं। जिन लचर और कमजोर रचनाओं ने जन-कविता का कभी भी गौरव पा लिया हो, उनने वह गौरव आगे चलकर खोया भी है। इसलिये चिन्ता का विषय यह नहीं। चिन्ता तो यह है कि जब 'नासमझों' समझदारों का रूप ग्रहण कर ले, 'तर्कहीनता' तर्क बनने का प्रयास करे तो क्या किया जाये? जब तर्क के नाम पर ऐसे कुतर्क देकर किसी सार्थक मूल्यांकन की दुहाई दी जाये कि—"पूर्व निर्धारित नियमों, उपनियमों को टटोलने से कविता की सच्चाई नहीं पायी जा सकती? डॉ० सत्य प्रेमी ऐसा कहकर क्या संकेत देना चाहते हैं? सच पूछा जाये तो उनके या उन जैसे हिन्दी गजल के पक्षधरों की कलई इसी बिन्दु पर आकर धुल जाती हैं। दरअसल ऐसे हिन्दीगजल के पक्षधर या विद्वान? गजल के नाम पर पाठकों को ऐसा कूड़ा—कचरा परोसना चाहते हैं—जिसे हिन्दी साहित्य को आँख मूँदकर उसके गले उतारा जा सके। इसके पीछे छुपा स्वार्थ भानु प्रताप सिंह भानु के शब्दों से पूरी तरह खुलकर सामने आ जाता है कि—"उर्दू गजल का ज्यों का त्यों अनुकरण हिन्दी कवियों को सफलता नहीं दे सकेगा। उर्दूगजल से भिन्नता होनी ही चाहिए अन्यथा हिन्दी और उर्दू गजल में एक रूप होने से हिन्दीगजल का अस्तित्व प्रथक न रहेगा। दोनों भाषाओं की गजलों में एक विभाजन रेखा होना अत्यावश्यक है।"

डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, श्री एस० एन० अहमद फारुख और श्री भानु प्रताप सिंह भानु के इन निष्कर्षों के आधार पर

प्र०५

आसानी से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है गजल के नाम पर एक बहुत वड़ी खाई हिन्दी और उर्दू के बीच खोदी जानी परमावश्यक है। ऐसा करने पर ही हिन्दी गजल का अस्तित्व कायम किया जा सकता है। हिन्दी में गजल के अस्तित्व की रक्षा के लिये भले ही गजल के चरित्र (कथ्य) और शरीर (नियम–उपनियम) अर्थात् शिल्प की हत्या करनी पड़े, हिन्दी के ऐसे विद्वान ऐसा करने में चूकेंगे नहीं। गजल हत्या कर गजल को प्राणवान घोषित करने की यह प्रक्रिया कितनी सार्थक और सारगर्भित हैं ? इसका अनुमान बड़ी ही सहजता से लगाया जा सकता है।

सच तो यह है कि कि—हिन्दी गजल के पक्ष में डॉ० सत्यप्रेमी का उक्त आलेख निर्जीव और आधारहीन सिद्धान्तों और तर्कों के सहारे खड़ा होने का प्रयास करता है और यही वजह है कि अपनी लाख कोशिशों के बावजूद औंधे मुँह गिर पड़ता है। डॉ० सत्यप्रेमी लिखते हैं कि—"समकालीन हिन्दी गजल पारम्परिक गजल की काव्य रूढ़ियों से मुक्त होने का प्रयास भी है तथा नये शिल्प एवं विषय का विकास भी इसमें परिलक्षित होती है।"

डॉ० सत्यप्रेमी ने अगर थोड़े से तर्कों का भी सहारा लिया होता तो सबसे पहले यह बताने का प्रयास करते कि अमुक हैं परम्परागत गजल की काव्य रूढ़ियाँ, जिनसे हिन्दी गजल ने इस प्रकार पाली है मुक्ति तथा शिल्प एवं विषय का यूँ हो रहा है उत्तरोत्तर विकास। लेकिन यह सब कुछ न समझाते हुए इन सवालों से पलायन करने में ही अपनी समझदारी का परिचय दिया है। यह पलायन की प्रवृत्ति उन पर किस तरह हावी है इसका एक उदाहरण और प्रस्तुत है—डॉ० पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी फरमाते हैं—"हिन्दी गजल के नामकरण को लेकर भी इन दिनों विवाद की स्थिति निर्मित हो गयी है। डॉ० धनंजय वर्मा और डॉ० राजेन्द्र कुमार ने धर्मयुग में 'धर्मयुग' (१६ नवम्वर १९८०) में हिन्दी गजल की रचनात्मक सम्भावनाओं को लेकर सवाल जवाव किये हैं। वर्मा जी ने साम्प्रदायिक बू की दृष्टि से विचार करते हुए हिन्दी गजल की सकारात्मक दृष्टि को कुंठित किया है और उर्दू और हिन्दी के भाषायी मामले को रेखांकित किया है। डॉ० राजेन्द्र कुमार ने हिन्दी गजल की सार्थकता एवं औचित्य को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से प्रतिपादित किया है।" यहाँ गौरतलब बात यह

Scanned by CamScanner

है कि डॉ० सत्यप्रेमी ने डॉ० धनंजय वर्मा की बात को बिना कोई तर्क दिये हवा में उड़ाने की कोशिश की है । अगर डॉ० वर्मा को हिन्दी गजल में साम्प्रदायिक बू महसूस हुई और उन्होंने हिन्दीगजल की सकारात्मक दृष्टि को कुंठित किया तो डॉ० सत्यप्रेमी को यहाँ उनका पक्ष रखते हुए यह जरूर बताना चाहिए था कि हिन्दीगजल में 'इन प्रमाणों' के साथ कहा जा सकता है कि कोई साम्प्रदायिक बू नहीं है और डॉ० वर्मा ने ऐसे किया है हिन्दी गजल की सकारात्मक दृष्टि को कुंठित । इसके साथ ही वह यह बताते कि ये है हिन्दी गजल की सकारात्मक दृष्टि । इन सब सवालों के जवाब न देते उन्होंने सीधा और सरल रास्ता इन सवालों से पलायन का अपनाते हुए डॉ० धनंजय वर्मा की बात पाठकों या सुधीजनों के समक्ष न रखी, डॉ० राजेन्द्र कुमार के तथ्यों को ही सबके समझ रखने में अपनी वाहवाही समझी ।'

डॉ० राजेन्द्र कुमार अपने लेख 'हिन्दी गजल कहना ही होगा' में तर्क देते हैं—"अगर कोई गजल का अपनी निजी परम्परा और निजी प्रतीकात्मक व्यंजना के नाम पर उसमें गुलो बुलबुल, शमा-परवाना को यथावत बनाये रखने का हिमायती हो तब तो बेशक हिन्दी गजल इस बात की गुनहगार है कि उसने इस परम्परा से हटकर अपने प्रयोग किये हैं लेकिन यह कहना कि गजल की असली शक्ति तो उसकी कल्पनाशीलता और प्रतीकात्मकता में हैं, उसे ही गजलों ने छोड़ दिया हैं, ठीक नहीं है । छोड़ा है तो काल्पनिकता को छोड़ा है, कल्पनाशीलता को नहीं । अफसोस है कि कुछ लोग काल्पनिकता और कल्पनाशीलता के अंतर को, एक के मुकाबले दूसरे की महत्ता को महसूस करने से कतराते हैं । इसीलिये उन्हें गजल की मूल प्रवृत्ति पर आघात होता नजर आता है ।"

अगर हम परम्परागत गजल का ही विवेचन करें तो उसमें गुलो-बुलबुल, शमा-परवाना, साकी-शराब मयखाना अपने अभिधात्मक, लक्षणात्मक, व्यंजनात्मक या प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत हुए हैं । इसके अतिरिक्त भाषायी-विस्तार न हुआ हो, ऐसा कहना, सोचना, समझना, परम्परागत गजल की परम्परा पर आँख मूँदकर बयान देने के अलावा कुछ नहीं ।परम्परागत गजल में वह सब कुछ भाषायी स्तर पर मौजूद है, जिसकी दुहाई परम्परागत गजल को खारिज कर हिन्दीगजल की स्थापना

को लालायित आज हिन्दी गजल के पुरोधा दे रहे हैं । यह बात दावे के साथ नहीं कही जा सकती है कि हिन्दी गजल शमा–परवाना, साकी –शराब-मयखाना, गुलो–बुलबुल से मुक्त हो गयीं हैं । यदि इनके स्थान पर फूल, तितली, शलभ-लौ, मदिरा, मदिरालय, मेंहदी, अधर, चुम्बन, यौवन आदि ने ग्रहण कर भी लिया है तो यह कोई बहादुरी का कार्य इसलिये नहीं हो कि इससे परम्परागत गजल की परम्परा टूट गयी हो और हिन्दी गजल ने नये प्रतिमान स्थापित कर लिये हों । बल्कि इससे तो परम्परा को हर प्रकार विस्तार ही मिला है । इस विस्तार को यदि हिन्दी गजल कहकर प्रचारित किया जायेगा तो सोचना यह पड़ेगा कि उर्दू गजल (जिसे खुद हिन्दी वाले उछाल रहे हैं, उर्दू वाले नहीं) क्या है? भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से तो उर्दू हिन्दी ही है । ऐसे में हिन्दी–उर्दू का यह 'विवाद गजल का विवाद न होकर भाषायी विवाद ज्यादा है । अगर भाषायी विवाद के आधार पर ही हमें विधाएँ या साहित्य तय करना है, वह भी अवैज्ञानिक तरीके से तो हम ऐसे आदरणीय विद्वानों से एक सवाल करना चाहेंगे कि यदि संज्ञा या संज्ञा विशेषणों मात्र के आधार पर ही कोई भाषा अपना भाषिक आधार खड़ा कर लेती है, भाषा के लिये यदि शब्दावली ही प्रमुख हैं तो हिन्दी में रेल, इन्जन, पिन, आलपिन जंगल, मुहावरा, टायर, ट्यूब, पंचर, बल्ब, होल्डर, साईकिल, स्टेशन आदि का विकल्प क्या है ? ऐसे शब्दों का हिन्दी के सर्वनामों, क्रियाओं आदि के साथ बहुतायत से प्रयोग करने पर क्या गजल हिन्दी की जगह अंग्रेजी गजल हो जायेगी ? नहीं न ? बात आती है इन्हीं शब्दों के प्रतीकात्मक व्यंजनात्मक प्रयोग के संदर्भ में तो डॉ० राजेन्द्र कुमार का यह कथन कि "परम्परागत गजलें शमा–परवाना, गुलो-बुलबुल तक ही सीमित रही है और हिन्दी गजल इस सीमा को तोड़कर बाहर खड़ी है, गलत इसलिये है कि गजल के इस प्रणयात्मक रूप का हिन्दी में आज भी प्रचलन खूब जोरों पर है ज्यादा दूर न जायें तो इसका प्रमाण पंकज उदास, अनूप जलौटा जैसे गजल गायकों और सरिता सुषमा आदि में छपने वाली गजलों तथा स्वयं 'प्रसंगवश' का यह हिन्दी गजल विशेषांक इसका प्रमाण है। यह तो डॉ०राजेन्द्र कुमार खुद स्वीकारते हैं कि गजल की तरह हिन्दी गजल में भी प्रतीकात्मकता सौर कल्पनाशीलता के तत्व विद्यमान हैं, बस छोड़ा है तो कल्पनिकता को । प्रश्न यह है कि हिन्दी में जो

Scanned by CamScanner

गजलें लिखी जा रही हैं और जब तक उनमें रुमानी संस्कार विद्यमान हैं तब तक यह दावे के साथ कैसे कहा जा सकता है कि उसने काल्पनिकता से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है ? और अगर यह मान भी लिया जाये कि गजल हिन्दी में आकर अपने परम्परागत संस्कारों से कटकर गुलो–बुलबुल की दास्तान नहीं रही हैं डॉ० सत्यप्रेमी के अनुसार 'अब इसमें अनास्था, निराशा, ऊब के साथ–साथ आक्रोश विद्रोह और प्रतिकार के स्वर मुखर हो रहे हैं ।'' डॉ० महावीर के मत से-इसका सम्बन्ध इश्क और व्यक्तिगत अभावों में न होकर सामाजिक जीवन की विसंगतियों से हैं ।'' प्रो० बी० एल० आक्छा की नजर में—हिन्दी गजल ने उस मुहावरे को पकड़ने की पहल की है जिसके केन्द्र में समकालीन जीवन के दर्दीले परिदृश्य हैं ।'' इन सब बातों का औचित्य तभी सिद्ध किया जा सकता है, जबकि मूल कृति और उसका चरित्र क्या है ? और परिवर्तन के बाद उस मूल कृति ने जो नया रूप या चरित्र ग्रहण किया है उसके अनुरूप उसका परम्परागत नाम या विशेषण उसे सार्थकता प्रदान करता है, अथवा नहीं ? इस संदर्भ में अगर गजल ने हिन्दी में आकर अपने परम्परावादी चरित्र को त्याग दिया है वह साकी, प्रेयसी, नृत्यांगना (कुल मिलाकर एक भोग विलासी औरत) की जगह अब ऐसी औरत की भूमिका निभा रही है, जिसे हर प्रकार से राष्ट्रीय, सामाजिक, पारिवारिक दायित्वों का बोध है, तब प्रश्न यह है कि क्या हम उसे अब भी 'भोग विलासी औरत' कहकर पुकारें या इस चरित्र के अनुरूप उसे कोई नया नाम दें ? इसी केन्द्र बिन्दु से इसी केन्द्र बिन्दु तक सारी की सारी बहस शुरू की जानी चाहिये । बहस के इस बिन्दु पर आकर हिन्दी गजल के प्रवर्त्तकों, उद्‌घोषकों, पक्षधरों की सारी की सारी चिन्तनप्रक्रिया को लकवा क्यों मार जाता है ? हिन्दी गजल का राग अलापने वाले जब तक इस तरह की बहस में शरीक नहीं होंगे तब तक गजल में न तो हिन्दी तय की जा सकेगी और न हिन्दी में गजल ।

रमेशराज

पृ०-8

Scanned by CamScanner

पाठकीय...

❀ तेवरी की पक्षधरता को आप निरंतरता के साथ बढ़ाये हुए हैं ।

–सूर्य कुमार पांडेय, लखनऊ

❀ आशा है आपके सफल नेतृत्व में भाषा के विभिन्न पहलुओं का उन्नयन और विकास इसी प्रकार होता रहेगा ।

–डॉ० दिनेश चमोला, सं० विकल्प, देहरादून

❀ कविता से बँधी जो मान्यताएँ आपने सम्पादकीय में प्रकट की हैं उनसे में पूर्णतः सहमत हूँ ।

–के० जी० बालकृष्ण पिल्ले, तिरुअनंतपुरम

❀ तेवरी को मैं सामाजिक यथार्थ को समर्पित हिन्दी गजल का एक प्रच्छन्न रूप ही मानता हूँ । सम्पादकीय में तेवरी के सौन्दर्य बोध को स्पष्ट करते हुए प्रकारान्तर में हिन्दी गजल के सौन्दर्य बोध को ही वाणी दी है ।

–डॉ० उर्मिलेश, बदायूँ

❀ सार्थक कथ्य एवं प्रभावशाली प्रस्तुति के कारण सम्पादकीय ने प्रभावित किया ।

–डॉ० राधेश्याम शर्मा, राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

❀ तेवरी के प्रथम बार दर्शन हुए, बहुत अच्छी लगी ।

–डॉ० मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद

❀ आपका सम्पादकीय तेवर भी देखने योग्य है, पढ़े सो जाने खूब ।

–चन्द्रसेन विराट, इन्दौर

❀ अंक लघु लेकिन सामग्री सार्थक ।

–शुभदा पांडेय, शिलचर (असम)

❀ हिन्दी खासकर तेवरी के प्रचार प्रसार में आपका यह प्रयास सार्थक ।

–आचार्य भगवत दुवे, जबलपुर

❀ लोक कवि रामचरन गुप्त के बारे में जानकारी पाकर प्रसन्नता हुई । माँ भारती की अर्चना में लोक साहित्यकारों का योगदान बड़ा विशद है ।

–अनिल अनवर, सं० गुलशन, जोधपुर

❀ गजलें आज व्यंग्य की धारा को छूकर लिखी जा रही हैं व्यंग्य के तेवर से रूबरू होती गजलों को तेवरी कहना तर्कसंगत है और उचित भी।

—दिनेश रस्तोगी, शाहजहांपुर

❀ सम्पादकीय तेवर, अशोक भाई का पिताजी के सम्बंध में आलेख और प्रकाशित तेवरियाँ प्रभावी एवं पठनीय।

—मदन मोहन उपेन्द्र, सं० सम्यक, मथुरा

❀ सम्पादकीय बेहतर। रचनाएँ गम्भीर भावमयी तथा वर्तमान त्रासदी के धरातल पर अच्छी लगीं।

—कोमल शास्त्री, उप सं० रैनबसेरा, अम्बेडकरनगर

❀ लघु रूप में पाठन सामग्री श्रेष्ठ एवं सार्थक।

—फरहत मोहनी, सं० सुलभा, भोपाल

❀ आप तेवरी आन्दोलन की मशाल आज भी जलाये चल रहे हैं, बधाई।

—प्रकाश सूना, मुजफ्फर नगर

❀ जहाँ सत्य एवं शिव विद्यमान है। वही सुन्दर है अन्ततः लोक कल्याण की भावना ही मूल में रहनी चाहिए।

—रामस्वरूप मूंदड़ा, बूंदी (राज०)

❀ सम्पादकीय उद्देश्यपरक। अशोक अंजुम, यादराम शर्मा, गोपाल बाबू शर्मा, गिरिमोहन गुरु, सुरेश त्रस्त, दर्शन बेजार, तरल अलापुरी आदि की स्तरीय रचनाएँ संग्रहीत।

—हरीलाल मिलन, कानपुर

❀ तेवरीपक्ष से परिचित कराने हेतु धन्यवाद।

—मनीष यादव, कानपुर

❀ डॉ० मधुर नज्मी के शेरों ने आपकी सम्पादकीय को जान दी।

—चन्दन अयोधी अश्क, तामियाँ

❀ विराट तूफानों में आपने तेवरियों का यह लघुदीप प्रज्जवलित कर रखा है।

—हरेन्द्र हर्ष, फर्रुखाबाद

❀ अचानक तेवरीपक्ष का नया अंक पाकर आश्चर्यचकित रह गया।

—कालीचरण प्रेमी, गाजियाबाद

Scanned by CamScanner

रवीन्द्र भ्रमर का गीत कर्म : 'अग्निवीणा बजाओ रे बंधु,

-डॉ० वेदप्रकाश अमिताभ

सहज कविता की अवधारणा के व्याख्याता, 'नवगीत' के उन्नायक और 'कविता सविता', रवीन्द्र भ्रमर के गीत, 'सोनमछरी मन बसी', 'धूप दिलाये आरसी' तथा 'गीत रामायण' के रचयिता रवीन्द्र भ्रमर आज हमारे बीच नहीं रहे। 'रवीन्द्र भ्रमर के गीत' संग्रह की 'भूमिका' में छायावाद के पैटर्न को त्यागकर गीतों के व्यक्तिनिष्ठ माध्यम से समष्टि, युग के यथार्थ तथा सौन्दर्यबोध की संतुलित अभिव्यक्ति करने वाले जिन गीतकारों की चर्चा हुई है, उनमें स्वयं डॉ० भ्रमर भी सरलता से समाहित किये जा सकते हैं। उनके प्रारंभिक गीतों में प्रकृति-सौन्दर्य से उपजी तीव्रतम अनुभूति के 'फ्लैश' हैं और प्रणयराग की मादक अनुगूँजें भी हैं। प्रकृतिराग और नारीसौंदर्य से संबद्ध बिम्ब 'सोनमछरी मन बसी' में भी पर्याप्त संख्या में हैं और गीतकार की संवेदनशीलता और सूक्ष्म इंद्रियबोध गवाही देते हैं। 'हँसने लगा है चाँद' की कुछ पंक्तियां इस संदर्भ में द्रष्टव्य हैं—

नये मौसम का रुपहला फूल जूड़े में सजा है
रंगीला सपना पलक की ओट अंजन-सा सजा है
रश्मियों का जाल बुन बुनकर, डालकर रेशमी फंदा
समूचे आकाश को कसने लगा है चाँद !

इसमें संदेह नहीं कि श्री भ्रमर आद्यंत सौन्दर्य और प्रीति के चितेरे रहे हैं लेकिन क्रमशः उनके सौन्दर्य और प्रीति के अंकन का क्षेत्र और स्वरूप व्यापक होता गया है। गीतकार ने नये परिवेश से जुड़ने की घोषणा की हैं, वह गीतों में चरितार्थ हुई है। 'रेशमी गाँठ' 'गुलाबी मुस्कान', 'सोनजुही वासना', 'गुलाबी ज्वार' के साथ-साथ एक नन्हे दीपक में अपेक्षाकृत आकर्षण अनुभव करना, बदलते सौन्दर्य-बोध का सूचक है—

युग अमावस की काजल लगी रात है
इसकी अलकों में विषधर की सौगात है

Scanned by CamScanner

इसका संत्रास झिलमिल शिखा पर लिये
एक नन्हा—सा दीपक मचलता रहे

इस तरह के गीतों से स्पष्ट होता है कि 'सोनमछरी' को सौन्दर्य-प्रतीक मानने वाली दृष्टि का दायरा संकीर्ण नहीं है। जब उनके गीत समय के ठेठ और कठोर यथार्थ से टकराते हैं, परिवेश की विसंगतियाँ एक-एक करके खुलती जाती हैं। पोथियों को छान-कर ज्ञानी बने कथित वृहस्पति, कलदार उगाने वाले धन्ना सेठ, बकुल ध्यानी राजनीतिज्ञ, सबके सब गीतकार के प्रहार की रेंज में आ गये हैं। रवीन्द्र भ्रमर की यह विशेषता है कि वे युगीन विडम्बनाओं को सलीके से गीत के मुहावरे को क्षतिग्रस्त किये बगैर सफलतापूर्वक व्यक्त कर सके हैं। उन्होंने अन्तर्विरोधों और हादसों को कभी सीधे खारिज किया है और कभी उन्हें व्यंग्य की मुद्रा में उकेरा है। 'तड़प रहा है मृगछौना/नागफनी के वन में' 'टूट रहे हैं निशि के पंख/देर नहीं है जय के स्वर्ण सवेरे में' आदि पंक्तियों में सपाट कथन के बजाय विम्ब ग्रहण कराने की कोशिश सफल हुई है।

श्री भ्रमर के जनधर्मी गीतों में भविष्य के प्रति शंका या निराशा का भाव न होकर आस्था और विश्वास के स्वर मुखर हैं। वे तिमिर के गहरे होते जाने की भयावहता से अवगत हैं। यह 'तिमिर' मूल्यहीनता और कदाचार का है, जो पूरे परिवेश को अपने असर में ले चुका है। इसलिए गीतकार 'भ्रमर' पूरे परिवेश में चेतना फूँक देने की अपील करते हैं। यह उनकी वैचारिकता और उससे जुड़े गीतकर्म की सार्थकता का प्रमाण है कि वे नजरूल इस्लाम की तरह 'अग्निवीणा' बजाने के लिये सन्नद्ध रहे हैं और अन्य गीतकारों से भी उनकी अपेक्षा यही थी—

युग बड़ा गूँगा कि बहरा है, क्रांति का स्वर गुँजाओ रे बंधु !
तिमिर का आतंक गहरा है, अग्निवीणा बजाओ रे बंधु !

अग्निवीणा बजाने का यह आह्वान आज मौन हो चुका है, लेकिन उसकी गूंज हिन्दीगीत के क्षितिज पर आज भी सुनी जा सकती है।

(बापूनगर, बेंक कालोनी अलीगढ़-२०२००१)

गीत-रामायण

नवगीत और सहज कविता की सुन्दर अभिव्यक्ति

- डॉ० गोपाल बाबू शर्मा

'गीत रामायण' डॉ० रवीन्द्र भ्रमर की नवीनतम काव्य-कृति है, जो उनके निधन के उपरान्त प्रकाशित हुई है। प्रस्तुत कृति में डॉ० भ्रमर ने रामायण की अन्तर्वस्तु को गीतों के सूत्र में पिरोने का प्रयास किया है, जो सराहनीय है।

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने आत्मकथ्य 'मैं आपन दिसि कीन्ह निहोरा' के अन्तर्गत स्वयं माना है कि "राम कथा के अनेक पक्ष बहु कथित और बहुचर्चित हैं। इनमें मौलिकता उत्पन्न करने का कलाप तो और भी कठिन है।" (पृष्ठ १५) अत: कथानक की दृष्टि से चाहे कृति में मौलिकता के दर्शन न हों, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति में पर्याप्त नवीनता और अनूठापन अवश्य है।

यों तो राम नदी पार करने में स्वयं समर्थ हैं, लेकिन परम पूज्या गंगा माँ का स्पर्श वे पाँवों से नहीं कर सकते, अत: केवट से पार उतारने को कहते हैं—

पार चले जाते हम पल में अपने ही बलबूते,
पर गंगा मैया को हरदम नहीं पाँव से छूते,
पावन है उसकी पयधारा, उसको नमन करें सौ बार। (पृष्ठ ६०)

प्राचीन घटना-प्रसंगों तथा मिथकीय प्रयोगों को आधुनिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में देखा-परखा गया है। परशुराम की जातीय भावना और हिंसा को आज के युग में अमान्य ठहराया गया है—

तुम त्रेता-द्वापर की अवतार-कथा हो, तुम्हें नमन है,
लेकिन सन्दर्भ नहीं जुड़ पाता इक्कीसवीं सदी में,
भृगुनन्दन ! फेंको अपना खूनी फरसा किसी नदी में। (पृष्ठ ४९)

भाषिक संरचना में भी नए प्रयोगों से काम लिया गया है। इससे अर्थ-गौरव को विस्तार मिला है। 'लव-कुश' प्रसंग में देखें—

चुटकी में दाब लिया अश्वमेघ का घोड़ा,
शक्ति और साहस के अद्भुत तूणीर हुए। (पृष्ठ १२७)

Scanned by CamScanner

राम-कथा का बिस्तृत कथानक चित्रात्मकता की सृष्टि करने में सहायक है, और इस सुविधा का लाभ भी कोई कुशल कवि ही उठा सकता है। 'गीत रामायण' में यह चित्रात्मक सौन्दर्य आकर्षक रूप में जगह-जगह उजागर हुआ है। यथा—

जूड़ा जब बाँधने लगे तो लटें फहर गईं। (पृष्ठ २२७)

'गीत रामायण' को व्यापक प्रचार-प्रसार मिल सके, इस लिए कवि ने इसमें अनेक प्रकार के लय-छन्दों तथा गीत-शैलियों का प्रयोग किया है। कवित्त, सवैया, कुण्डलियाँ, बरवै, दोहा आदि पारम्परिक छन्दों के अतिरिक्त, सोहर, बधावा, लोरी, सेहरा ख़्याल, कजली, आल्हा, गजल, दादरा, भजन इत्यादि विभिन्न लौकिक छन्दों एवं गान-शैलियों का भी उपयोग हुआ है, नृत्य तथा नाट्य शैलियों का भी इसमें समावेश है। प्रसंग के अनुरूप इनमें विविधता है। पुत्र-जन्म से सम्बन्धित एक सोहर इस प्रकार है—

चन्दन का पलना रे डोरियाँ रेशम की।
ललना झूल रहे श्री राम, झुलाएँ देवी कौशल्या।
(पृष्ठ १६)

'सेतुबन्ध रामेश्वरम्' में मल्लाहों की गीत-शैली के दर्शन होते हैं—'हाँफ नहीं, हाँक लगा, हइया हो-हइया हो।' (पृष्ठ ६७) तो धोबी के प्रसंग में गीत के स्वर इस तरह मुखरित होते हैं- 'धोवी ने खोट निकाली, राजा राम घुल गए छिओ राम।' (पृष्ठ १२६)

भाषा विषय और भावों की अनुवर्तिनी है। अप्रस्तुत-विधान, प्रतीक योजना, तत्सम शब्दों के साथ-साथ तद्भव, देशज और उर्दू-फारसी शब्दों के प्रयोग, लोकोक्तियों और मुहावरों के उपयोग आदि ने भाषा को सजीव तथा प्रवाहमयी बना दिया है।

'गीत रामायण' में गीतात्मकता भी है और सहजता भी। कवि का कथन है कि उसने इसमें 'हर पद पर शिल्प-शिला के घाट' नहीं बाँधे हैं, और 'कल्पना-कला के ठाट-बाट भी कुछ पीछे छूट गए हैं।' पर इससे क्या? कृति में अपेक्षित काव्य-सौन्दर्य अपनी जगह मौजूद है।

डॉ० रवीन्द्र भ्रमर का नवगीत और सहज कविता के क्षेत्र में विशेष अवदान रहा है। 'गीत रामायण' भी 'नवगीत' और 'सहज कविता' के मिले-जुले रूप की सुन्दर अभिव्यक्ति है।

(८२, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़)

Scanned by CamScanner

'रामचरन कवि की रचि वतन परस्त इंग्रेज'

–डॉ० रवीन्द्र भ्रमर डी. लिट्.
(पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष–
हिन्दी विभाग, अलीगढ़ युनिवर्सिटी

अलीगढ़ के एसी गाँव में सन् १९२४ ई० में जन्मे लोककवि रामचरन गुप्त ने अपनी एक रचना में यह कामना की है कि उन्हें देशभक्त कवि के रूप में मान्यता प्राप्त हो। यह कामना राष्ट्रीयता आन्दोलन के उस परिवेश में उपजी, जिसमें स्वतंत्रता की माँग अत्यन्त प्रबल वेग में मुखर हो उठी थी। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकंजे में कसा देश शोषण, अन्याय और दमन का शिकार बना हुआ था। चारों ओर गरीबी, भुखमरी, जहालत और बीमारी का बोल-बाला था। लोककवि रामचरन का जन्म साम्राज्यवादी शोषण के ऐसे ही राष्ट्रव्यापी अंधकार की छाया में हुआ। इनका बचपन बड़ी गरीबी में बीता था। किशोरावस्था में इन्होंने एक परिवार में बर्तन माजने तक का काम सीख लिया और आगे चलकर तालों का एक कारखाना भी लगाया किन्तु कई कारणों से इसमें विशेष सफलता नहीं मिली। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में 'डासत ही सब निसा सिरानी, कबहुँ न नाथ नींद भर सोयो'—जैसी अनवरत संघर्षमय परिस्थिति में, लगभग सत्तर वर्ष की अवस्था में इनका निधन हो गया।

कविवर अज्ञेय ने एक कविता में कहा है–'दुःख सबको माँजता है और जिसे माँजता है उसे तप्त कुन्दन जैसा खरा बना देता है।' रामचरन गुप्त के संघर्षमय जीवन और संवेदनशील हृदय ने इन्हें कविता और उन्मुख किया। ये ज्यादा पढ़े-लिखे तो थे नहीं, अतः इनके व्यक्तित्व का विकास लोककवि के रूप में हुआ। दिन भर मेहनत-मजदूरी करते, चेतना के जागृत क्षणों में गीत रचते-गुनगुनाते और रात में बहुधा 'फूल डोलों' में जाते जहाँ इनके गीत, जिकड़ी और भजन बड़े चाव से सुने जाते थे। ये सच्चे अर्थों में एक सफल लोककवि थे। इन्होंने ब्रज की लोकरागिनी में सरा-बोर असंख्य कविताएँ लिखीं जो किसी संग्रह में प्रकाशित नहीं होने

के कारण अव्यवस्था के आलजाल में खो गई। इनके सुपुत्र श्री रमेश राज़ ने इनकी कुछ कविताएँ संजोकर रख छोड़ी हैं जिनके आधार पर इनके कृतित्व का यथेष्ट मूल्यांकन सम्भव हो सका है। रमेशराज हिन्दी कविता की नयी पीढ़ी के एक सफल हस्ताक्षर हैं। इन्हें हिन्दी की तेवरी विधा का उन्नायक होने का श्रेय प्राप्त है। अतः इन पर यह दायित्व आता है कि ये अपने स्वर्गीय पिता की काव्य धरोहर को सहेज-सम्हाल कर रक्खें और चयन प्रकाशन तथा मूल्यांकन के द्वारा उसे उजागर कराएँ।

लोक गीत की संरचना के विषय में एक धारणा यह है कि अगर कोई पूछे कि यह गीत किसने बनाया तो तुम कह देना कि वह दुःख के नीले रंग में रंगा हुआ एक किसान था। इसका आशय यह है कि लोक गीतों की रचना लोक जीवन की वेदना से होती है और इनका रचयिता प्रायः अज्ञात होता है। वह समूह में घुल मिलकर समूह की वाणी बन जाता है। लोक गीत मौखिक परम्परा में जीवित और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक की यात्रा करते रहते हैं। लोक गीतों की एक कोटि वह भी मानी जाती है जिसकी रचना लोक भाषा और लोक धुनों में किसी ज्ञात और जागरूक व्यक्ति द्वारा की जाती है। लोक कवि रामचरन गुप्त की रचनाएँ लोक काव्य की इसी कोटि के अन्तर्गत आती हैं। इन्होंने राष्ट्रीय, सामाजिक चेतना के कुछ गीतों के अतिरिक्त, मुख्यतः जिकड़ी भजन लिखे हैं। जिकड़ी ब्रज का एक अत्यन्त लोकप्रिय काव्यरूप हैं। इसमें भक्ति भावना का स्वर प्रधान होता है और ये लोकगायकों की मंडलियों द्वारा गाये जाते हैं। ये मंडलियाँ आपस में होड़ बदकर, अपने-अपने जिकड़ी भजन प्रस्तुत करती हैं। गीतों में ही प्रश्नोत्तर होते हैं। जिस मंडली के उत्तर सार्थक और सटीक होते हैं, उसी की जीत होती है। रामचरन गुप्त को इस कला में महारत हासिल थी। ये जिस टोली में होते, विजय उसी की होती और जीत का सेहरा इनके सर बांधा जाता था।

इस लोक कवि की रचनाओं को भाव-सम्पदा की दृष्टि से तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। इनकी भाषा तो बोलचाल की परम्परागत ब्रजभाषा है। कहीं-कहीं खड़ी बोली की भी चाशनी दिखाई पड़ती है। शैली की दृष्टि से अधिकांश रचनाएँ

जिकड़ी भजन और कुछ रचनाएँ प्रचलित लोक धुनों की पद्धति में रची गई है किन्तु भावानुभूति अथवा विषय की दृष्टि से इनका रचना फलक विस्तृत है। जैसा कि इस लेख के शीर्षक से ध्वनित है, कवि रामचरन गुप्त की रचनाओं की पहली श्रेणी राष्ट्रीयता की भावना से युक्त गीतों की है। इनमें स्वाधीनता-संग्राम की चेतना और स्वाधीनता के लिए बलि–पथ पर जाने वाले वीरों के साहस एवं ओज का मार्मिक वर्णन किया गया है। इस भाव की एक रचना के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं—

'ए रे रँग दै रँग दै, बीरन रँगरेज चुनरिया मेरी अलबेली।
पहला रंग डाल देना तू बिरन मेरे आजादी का,
और दूसरौ होय चहचहौ, इंकलाब की आँधी का,
एरे घेरा डाले हों झाँसी पै अँगरेज, चुनरिया मेरी अलबेली
कितनी हिम्मत, कितना साहस रखता हिन्दुस्तान दिखा,
फाँसी चढ़ते भगतसिंह के अधरों पर मुस्कान दिखा,
एरे रामचरन कवि रचि वतन परस्त इमेज, चुनरिया मेरी....

कवि की 'वतनपरस्त' 'इमेज' के सन्दर्भ में दो उदाहरण इस प्रकार हैं—इनमें भारत के वीर जवानों की वीरता, शक्ति और साहस का वर्णन बड़े मुखर स्वरों में किया गया है—

"पल भर में दें तोड़ हम, दुश्मन के विषदन्त।
रहे दुष्ट को तेग हम और मित्र को संत॥

अरि के काटें कान
हम भारत के वीर जवान
न बोदौ हमकूँ बैरी जान
अड़ें हम डटि–डटि कें।

हर सीना फौलाद
दुश्मन रखियौ इतनी याद
मारौ हमने हर जल्लाद
लड़ें हम डटि–डटि कें।

यह रचना भारत-पाक और भारत-चीन युद्ध के परिप्रेक्ष्य में रची गई थी। स्वाधीनता प्राप्त के बाद स्वाधीनता और देश की रक्षा का भाव भी रामचरन गुप्त की रचनाओं में दिखाई पड़ता है—

हम बच्चे मन के सच्चे हैं, रण में नहीं शीश झुकायेंगे,
हम तूफानों से खेलेंगे, चट्टानों से टकरायेंगे ।
वीर सुभाष, भगत जिस आजादी को लेकर आये थे
उस आजादी की खातिर हम अपने प्राण गवायेंगे ।

इन उदाहरणों में 'विषदंत तोड़ना', 'कान काटना', 'सीना फौलाद होना', 'तूफानों से खेलना', 'चट्टानों से टकराना' इत्यादि मुहावरों के संयोग से वीरता और ओज की निष्पत्ति सहजरूप से हुई है । इससे कवि की भाषाशक्ति का पता चलता है ।

दूसरी श्रेणी में सामाजिक सरोकार की रचनाएँ आती हैं । कहीं मँहगाई, चोर बाजारी और गरीबी की त्रासदी को उभारा गया है और कहीं वीरता, दानशीलता, संयम, साहस, विद्या, विनय और विवेक आदि जीवन मूल्यों को रचना-सूत्र में पिरोया गया है—

"जा मँहगाई के कारन है गयौ मेरौ घर बरबाद
आध सेर के गेहूँ बिक गये, रहे हमेशा याद ।
सौ रुपया की बलम हमारे
करहि नौकरी रहहिं दुखारे
पाँच सेर आटे कौ खर्चा, है घर की मरयाद ।
पनपी खूब चोर बाजारी
कबहू लोटा, कबहू थारी
धीरे-धीरे सब बरतन लै गये पीठ पर लाद ॥"

उच्चतर जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में एक यह रचना अवलोकनीय है, जिसमें कवि ने किसी जननी से ऐसे पुत्र को जन्म देने की अनुनय की है जो दानी हो या वीर हो—

"जननी जनियौ तौ जनियौ ऐसौ पूत
ए दानी हो, या हो सूरमा ।
सुत हो संयमशील साहसी
अति विद्वान विवेकशील सत् सरल सज्ञानी
रामचरन हो दिव्यदर्शी दुखहंता दानी
रहै सत्य के साथ
करै रवितुल्य उजाला ।
जनियौ तू ऐसौ लाला ॥"

Scanned by CamScanner

लोककवि रामचरन गुप्त का वास्तविक रूप इनके जिकड़ी भजनों में दिखाई पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कठिन जीवन-संघर्ष ने इन्हें ईश्वरोन्मुख बना दिया था। इसे कवि की वतनपरस्ती का भी एक अंग माना जा सकता है क्योंकि देशभक्ति के अन्तर्गत देश की संस्कृति आध्यात्मिक चेतना का भी विन्यास होता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की कृतियों के माध्यम से इस अवधारणा को भली प्रकार समझा जा सकता है। ध्यातव्य यह भी है कि जिकड़ी भजनों का कथ्य और मूल स्वर धार्मिक ही होता है। अस्तु, रामचरन गुप्त के जिकड़ी भजनों में धार्मिक चेतना और भक्ति-भावना यथेष्ट रूप में मुखरित हुई है। इनकी इस कोटि की रचनाओं के दो वर्ग हैं। एक में रामावतार की आरती उतारी गई है तो दूसरे में कृष्णावतार का कीर्तन किया गया है।

राम कथा से सन्दर्भित दो उदाहरण दर्शनीय हैं—

"राम भयौ वनगमन एकदम मचौ अवध में शोर,
रोक रहे रस्ता पुरवासी चलै न एकहू जोर।
त्राहि-त्राहि करि रहे नर-नारी
छोड़ चले कहाँ अवध बिहारी,
साथ चलीं मिथिलेश कुमारी औ सौमित्र किशोर।

— — —

श्रीरामचन्द्र सीता सहित खड़े शेष अवतार
केवट से कहने लगे सरयू पार उतार।
जल में नाव न डारूँ, नैया बीच न यूँ बैठारूँ
भगवन पहले चरण पखारूँ, करूँ तब पार प्रभू!

भाषा-कवियों में गोस्वामी तुलसीदास से लेकर पंडित राधेश्याम कथावाचक तक ने इन प्रसंगों का मार्मिक वर्णन किया है। रामचरन गुप्त भी इनसे अछूते नहीं रहे। कृष्णकथा के सन्दर्भ में इन्होंने भागवत आदि महाभारत के प्रसंगों को अनुस्यूत किया है। विनय भावना की इनकी एक रचना इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य है—

"बंसी बारे मोहना, नंदनंदन गोपाल
मधुसूदन माधौ सुनौ विनती मम नँदलाल।
आकर कृष्ण मुरारी, नैया करि देउ पार हमारी

Scanned by CamScanner

प्रभु जी गणिका तुमने तारी धीर पढ़ावत मैं
वस्त्र पहाड़ लगायौ, दु:शासन कछु समझि न पायौ,
हारो भुजा अन्त नहिं आयौ चीर बढ़ावत में ॥''

ब्रज में लोककवियों और लोकगायकों की एक परम्परा रही है। अलीगढ़ जनपद में नथाराम गौड़, छेदालाल मूढ़, जगनसिंह सेंगर और साहब सिंह मेहरा जैसे रचनाकारों ने इसे आगे बढ़ाया है। इस लोकधर्मी काव्य परम्परा में रामचरन गुप्त का स्थान सुनिश्चित है। राष्ट्रीय-सामाजिक चेतना के गीतों और जिकड़ी भजनों की संरचना में इनका योगदान सदैव स्वीकार किया जायेगा।

स्व० डॉ० रवीन्द्र भ्रमर का एक गीत

ध्यान

एक चिड़िया मुझे आज प्यारी लगी
देर तक उसको दाना चुगाता रहा।
आज आंगन के बिरछे भी अच्छे लगे
देर तक सींचता औ' निराता रहा।

आज आकाश गहरा लगा कुछ अधिक
देर तक उससे आँखें मिलाता रहा।
कुछ नहीं गा सका था दिनों में इधर
आज भर दोपहर गुनगुनाता रहा।

आज क्या हो गया था मुझे क्या कहूं
जैसे कोई हिंडोले झुलाता रहा।
आज शायद अनायास अनजान में
ध्यान मुझको तुम्हारा ही आता रहा।

रामचरन गुप्त के काव्य में यथार्थ चेतना

ज्ञानेन्द्र साज
सम्पादक–जजर कश्ती

'जर्जरकश्ती' मासिक के जनवरी–१९८७ अंक में प्रकाशित लोककवि स्व० रामचरन गुप्त की रचनाएँ युगबोध की जीवन्त रचनाएँ हैं। हर लोककवि की कविता में आमजन लोकभाषा में बोलता है। ये कविताएं तथा कथित बुद्धिजीवी कहे जाने वाले लोगों की रचनाओं से सदैव भिन्न रही हैं। लेकिन ऐसी रचनाओं से कहीं बेहतर हैं।

लोककवि लोकभाषा में प्रचलित गायन शैलियों का वेताज वादशाह होता है। रसिया, मल्हार, दोहा, होली, स्वांग, वीर और फिल्मी धुनों में आम जन की बात लोककवि ही कह सकता है। रामचरनजी भी इससे अछूते नहीं रहे।

उनकी रचनाओं के कुछ दृष्टव्य पहलू इस प्रकार है। एक निर्धन अपने बच्चे को पढ़ा न सकने की पीड़ा को यूँ व्यक्त करता है–

ऐरे ! एक चवन्नी हू जब नायें अपने पास
पढ़ाऊँ कैसे छोरा कूँ।

वहीं दूसरी ओर कवि का यह आव्हान देखिए–

जननी ! जनियो तौ जनियो ऐसौ पूत
ऐ दानी हो या सूरमा।

मल्हार की गायकी के माध्यम से पूर्व प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु को देश की पीड़ा के रूप में कवि स्वीकारता है–

"सावन सूनौ नेहरू बिन है गयौ जी।"

देश-प्रेम, गुप्त जी का प्रिय विषय है। चीन और पाकिस्तान जैसे देशों की नीचता की सही पकड़ उनकी कविता में है–

चाऊ-एन-लाई बड़ौ कमीनौ भैया कैसी सपरी

अथवा

सीमा से तू बाहर हैजा ओ चीनी मक्कार
नहीं तेरी भारत डारैगौ मींग निकार

अथवा

ओ भुट्टो वदकार रे, गलै न तेरी छार रे,

अनुप्रासिक सौंदर्य भी रचनाओं में भरा पड़ा है। अनेक प्रकार से काव्य सौंदर्य परिलक्षित होता है—

भूषण भरि भण्डार भक्त भय भंजन भरते भात चले

अथवा

दारुण दु:ख दु:सहिता दुर्दिन दलनदयालु द्रवित भए

किसी भी बोली के आम प्रचलित शब्दों का प्रयोग करके लोककवि उन शब्दों को प्रसिद्धि दिलाने में बड़े सहायक का काम करता है यथा रामचरन जो द्वारा प्रयोग किए गए कुछ शब्द–मींग, दुल्लर, कण्डी, पनियाढार, गर्रावै, पपइया तथा पटका–पटकी आदि।

आज की यह मांग है कि ब्रज क्षेत्र से लुप्त होती इन संगीत मय विधाओं को जागरुक रखने के लिए लोककवि रामचरन गुप्त के काव्य पर विशेष चर्चाएं आयोजित कराई जायें। ताकि मूल्यांकन के साथ–साथ विधाएं भी बनी रह सकें।

(१७/२१२, जयगंज, अलीगढ़–उ.प्र.)

क्षणिका—

नेतागीरी

-के० जी० बालकृष्ण पिल्लै

(१)

बस कुर्सी का मोह लिए
बाँटे स्वप्न सुनहरे
उनको क्यों कर नेता मानें ?
जो विषधर जैसे ठहरे !

(२)

धांधलियों केवल पर जिनके
कुर्सी से सम्बन्ध गहरे
उनको क्यों कर नेता मानें ?
वे तो अपराधी ठहरे !

(३)

जिनके घर काले धन का
रातों—दिन सागर लहरे
उनको कैसे नेता मानें ?
वे भ्रष्टाचारी ठहरें !

Scanned by CamScanner

लोकभाषा के सुदृढ़ स्तम्भ : लोककवि रामचरन गुप्त

—डॉ० अभिनेष शर्मा

स्व० रामचरन गुप्त माटी के कवि थे अपने आस पास बिखरे साहित्य को अपने शब्दों का जामा पहनाकर लोकधुन से उसका शृंगार कर जिस तरह से वक्त की इमारतों में सहेजते रहे, शायद वर्तमान में कोई भी उस तरह का साहस नहीं कर पाता है। वर्तमान कविता जो शायद खुद ही तुकान्त और अतुकान्त शीर्षकों में बिभक्त होकर कभी गीत कभी हिन्दी गजल कभी नई कविता की उपाधि से विभूषित होकर अपनी विवशता पर हैरान है, ऐसे में लोकगीत, लोक-धुन और लोकभाषा के सुस्पष्ट सुदृढ़ स्तंभों पर आसीन गुप्त जी का साहित्य, मील का पत्थर बना काव्य सृजकों के लिये नई राह खोलता है : प्रतिभा कभी भी एक जगह संकुचित नहीं रह सकती। प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति चाहे ग्रामवासी हो या कतिपय शहरी वह पुस्तक पढ़कर स्वयं शास्त्री हुआ हो या पाठशालाओं में अध्यापकों की अभिरक्षा में शिक्षित हुआ। वह कभी भी गुमनामी के तिमिर में तिरोहित नहीं हो सकता। समय को समझकर उसकी आहट लेनी ही होगी तथा उसको पूर्ण सम्मान देते हुए उसका वास्तविक अधिकार उसे देना ही होगा। स्व० गुप्त जी की रचनाओं से सुसज्जित 'जर्जर कश्ती' के अंक सही मायनों में साहित्य के आँगन में पल्लवित उस पुष्प की सुगन्ध का व्यापक गगन में स्थापित करने का एक बेजोड़ प्रयास रहे हैं। प्रस्तुत अंकों में प्रकाशित रचनायें गुप्त जी के व्यक्तित्व को पूर्ण रूप से चित्रांकित करने में सफल रही हैं। साहित्य की गद्य और पद्य दोनों विधाओं में उनकी मजबूत पकड़ दृष्टिगोचर होती है। सामयिक काल की घटनाओं का निवेश रचनाओं को श्वेत पत्र की तरह महत्व-पूर्ण बना देता है। जो बात हमारे राजनीतिज्ञ कहते हुए डरते हैं, उसे उन्होंने पूर्ण जोश से अपने गीतों का केन्द्र बिन्दु बनाया। उसी का चित्रण निम्नलिखित पंक्तियों में है—

'लाशों पर हम लाश बिछायें करि दें खूँ के गारे हैं
आँच न आने दें भारत पै चले भले ही आरे हैं ॥''

— — —

भारत की उत्तर सीमा पर फिर तुमने ललकारा है
दूर हटो ए दुष्ट चीनियों । भारतवर्ष हमारा है ।

— — —

ओ मिस्टर अय्यूब आग धधकी है सूखी कंडी में
लहर लहर लहराये तिरंगा अवना रावलपिंडी में ।

यथार्थ का काव्यांकन करने में भी गुप्त जी पीछे नहीं रहे हैं । जीवन के छोटे-छोटे सत्य जो हर कदम पर हमारी सहायता करते हैं या फिर हमारे गतिमान कदमों में बेड़िया डालते हैं, उनका हर कवि की शैली पर व्यापक असर पड़ता है तथा लोककवि होने के कारण गुप्त जी भी उससे अछूते नहीं हैं—

मैं सखि निर्धन का भयी करै न इज्जत कोय
बुरी नजर से देखती हर कोई अब मोय

उपरोक्त पंक्तियों में गरीब नारी हृदय का सटीक चित्रण है जो उनके काल में ही नहीं, वर्तमान में भी रत्ती-भर भी परिवर्तित नहीं है । तभी तो दुखियारी आगे कहने पर विवश है—

कैसो देश निगोरा
तकै मेरी अंगिया कौ डोरा
मोतै कहत तनक से छोरा
चलरी कुंजन में ।

यदि कवि की लेखनी सीमित परिभाषाओं को ही परिभाषित करती रहे या कवि को किसी एक विधा में संतुलित कर दे तो वह कवि कभी लोककवि नहीं हो सकता और नहीं कभी यह उक्ति की जाती है कि— जहां न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि ।

तभी तो गुप्त जी की साहित्य मंजूषा में भक्ति गीतों की भरमार है और यही कारण है कि सीधी, सरल और गेय ब्रज भाषा में रचित उनके भक्तिगीत, रसिया उन्हें जनकवि बनाने में सहायक होते हैं । वियोग और संयोग उनके भक्तिगीतों की जान है, तभी तो वह गाते हैं—

ओ अंतिम समय मुरारी, तुम रखना याद हमारी

— — —

(शेष पृष्ठ २८ पर)

तेवरी :
युवा आक्रोश की तीसरी आँख

-डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

'तेवरी' के प्रति मेरा ध्यान निरन्तर आकर्षित होता रहा है और आज की हिन्दी कविता के सन्दर्भ में, मैं इसे एक सार्थक एवं साहसी कदम कहना चाहता हूँ। एक काव्य विधा के रूप में 'तेवरी' का ताना-बाना अलीगढ़ में तैयार हो रहा है लेकिन इसकी काव्यसर्जना के पैटर्न अन्य स्थानों पर भी बुने गये हैं या जाने लगे हैं। इसे मैं 'तेवरी' में निहित कथ्य की चिन्गारी और शिल्प की आँच के प्रयास रूप में देखता हूँ।

मेरे शहर में युवा आक्रोश के कवि रमेशराज, अरुण लहरी, योगेन्द्र शर्मा और सुरेश त्रस्त ने 'जन जागरण' की विचार-प्रधान 'तेवरी-पक्ष' का सम्पादन प्रारम्भ किया। इसके अङ्कों में प्रकाशित सामग्री को मैं देखता रहा हूँ। श्री रमेशराज द्वारा सम्पादित 'तेवरी' कवियों के कुछ समवेत संकलन भी मुझे देखने को मिले। 'तेवरी' के विस्फोटक कथ्य और आक्रोशपूर्ण मुद्रा का जो सटीक परिचय कराते हैं, इन संकलनों के नाम हैं— (१) अभी जुबां कटी नहीं, (२) कबीर जिंदा है, (३) इतिहास घायल है। इन संकलनों में लगभग ढाई दर्जन कवियों की तेज-तर्रार और धारदार रचनाएं संकलित हैं। तेवरी कवि श्री बेजार की रचनाओं का एक स्वतन्त्र-सम्पूर्ण संकलन भी प्रकाशित हुआ है—'एक प्रहार लगातार'। काव्य-संग्रह का यह नाम भी तेवरी कवियों की युयुत्सु मनःस्थिति और तेवरी विधा के बोध-पक्ष को उजागर करता है। श्री बेजार से कई कारणों से मेरा कुछ गहरा परिचय है। उनके इस काव्य-संग्रह को मैंने बहुत ध्यान से और किंचित् आत्मीयता के साथ पढ़ा। 'तेवरी' के प्रति मेरी अनुशंसा और आस्था का प्रसंग यहीं से शुरू होता है।

कुछ समय पूर्व, अलीगढ़ के बुद्धिजीवी वर्ग के बीच आयोजित श्री बेजार की काव्यकृति 'एक प्रहार-लगातार' के विमोचन-समारोह की अध्यक्षता का भार मुझे सौंपा गया। इसके लिये 'सार्थक-सृजन प्रकाशन' के नियामक और 'तेवरी' के सूत्रधार श्री रमेशराज का मैं

Scanned by CamScanner

विशेष आभारी हूं। उक्त अवसर पर मैंने 'तेवरी' को युवावर्ग की तीसरी आँख की संज्ञा दी थी। पुराण–पुरुष शिव की तीसरी आँख जब खुलती है तो किसी ज्वालामुखी की भाँति तप्त लावा उगलती है और पाप का प्रत्यूह तथा कामाचार का अवरोध जलकर राख हो जाता है। ध्यान–मग्न शिव की समाधि बड़ी मुश्किल से टूटती है लेकिन जब कभी ऐसा होता है तो कोहराम मच जाता है—कृत्रिम वसन्त में आग लग जाती है। तेवरी के शब्द–संधान को देखकर ऐसा प्रतीत होने लगा है कि वर्तमान सामाजिक विभंगतियों और सामाजिक विद्रूपताओं में आग लगानेके लिये युवा–आक्रोश की तीसरी आँख खुल गई है। विश्व–वाङ्मयका इतिहास साक्षी है कि कविता से फूल और त्रिशूल दोनों का काम लिया गया है। सामाजिक क्रान्ति के सन्दर्भ में कवि की कलम हरसिंगार की टहनी में तलवार उगा लेती है। आज के सामाजिक जीवनमें जो अन्याय, उत्पीड़न और शोषण की विभीषिका है, उसी के समानान्तर युवा कवियों की कलम अन्याय की शृंखला को काटने केलिये तलवार और शोषण के पूंजीवादी प्रपंच को जलाने के लिये बारुदी भूमिका तलाश कर रही है। 'तेवरी' के तेवर इसी पृष्ठभूमि में ध्यातव्य हैं—

"अब हंगामा मचा लेखनी, कोई करतब दिखा लेखनी।
मैं सूरज हूँ इन्कलाब का, मेरा इतना पता लेखनी।"

—रमेशराज : अभी जुबाँ कटी नहीं।

"अब कलम तलवार होने दीजिये
दर्द को अंगार होने दीजिये।
घायल है इतिहास समय के वारों से
चलो रचें साहित्य आज अंगारों से।"

—बेजार, एक प्रहार : लगातार

'तेवरी' विधा रोमानी गजल का युयुत्सावादी हिन्दी रूपान्तर मात्र नहीं है। समकालीन कविता में गजल का प्रचार खूब हुआ है और तेवरी के कवि भी गजल के पैटर्न के प्रति भले ही आकर्षित दिखाई पड़ते हैं किन्तु इनकी रचनाओं में हिन्दी–छन्दों का प्रयोग विशेष द्रष्टव्य है। आल्हा के लोकछन्द में बुनी गई एक सफल रचना इस प्रकार है—

Scanned by CamScanner

"हाथ जोड़कर महाजनों के पास खड़ा है होरीराम।
ऋण की अपने मन में लेकर आस खड़ा है होरीराम।।
—सुरेश त्रस्त : कबीर जिन्दा है।

और दोहा छन्द में तेवरी का एक प्रयोग देखिये—

"रोजी-रोटी दे हमें या तो यह सरकार।
वर्ना हम हो जाएँगे गुस्सैले खूँ-ख्वार।।"
—रमेशराज : कबीर जिन्दा है।

'तेवरी' की रचनाओं में पुराने छन्दों के अभिनव प्रयोग के साथ जनभाषा की मुखरतम और संप्रेषण की सहजता एक विशिष्ट आयाम को उभारती है। अब कविता में जन भाषा की शब्दावली और मुहावरों का प्रयोग बहुत जरूरी है। कविता यदि क्रान्ति का औजार और सामाजिक परिवर्तन का माध्यम है तो उसमें सीधा और सटीक संप्रेषण होना चाहिए। सातवें दशक में अलीगढ़ से अखिल भारतीय स्तर पर 'सहज कविता' का अभियान चलाते हुए मैंने अनुभूति की सार्थकता और अभिव्यक्ति की सहजता पर विशेष बल दिया था। मुझे खुशी है कि नवें दशक में 'तेवरी' ने इस ऐतिहासिक दायित्व को ग्रहण करने की सूझबूझ दिखाई है। समकालीन हिन्दी कविता में इसके भविष्य के प्रति मैं आशान्वित हूं।

(शाकुन्तलम्, मैरिस रोड, अलीगढ़-२०२००१)

कतआत

(१) —अरुण साहिबाबादी

उसको सूरज से क्या बचायेगा
जिसको गलना है गल ही जायेगा
हिम के परबत पे जो छुपाया है
वो जमीनों पे बहके आयेगा.

(२)

सच है सोना तुझे सकायेगा
लेकिन आहन भी काम आयेगा
क्यों कि सोने के तू खजाने पर
कुफ्ल आहन का ही लगायेगा.

(पृष्ठ २४ का शेष)

मीठी–मीठी प्यारी–प्यारी बाजो रे मुरलिया
सुन मुरली की तान बावरी ब्रज की भयी गुजरिया

जिकड़ी भजन, आजादी के गीत, कथा गीत यहाँ तक कि मौसम के परिवर्तन का स्वागत मल्हार से, हर क्षेत्र में उनकी रचनायें अपनी छटा बिखेरते हुए मिल जाती है।

कारे–कारे बदरा छाये छुआ छूत के जी
ऐजी आऔ हिलमिल झूला लेऊ डार

— — —

सावन समता कौ आये मेरे देश में जी
एजी रामचरन कौ नाचै मनमोर

ऐसी पंक्तियों को गुनगुनाते हुए किसका मनमोर नहीं नाच उठेगा लघुकथाओं में भी उनके द्वारा किये गये कटाक्ष काफी सटीक हैं— "रे मूरख किलो में नौ सौ ग्राम तो हम वैसे ही तोले हैं और क्या कम करें। प्रस्तुत अंक में उनके पुत्र द्वारा लिखी गयी कविताऐं उनकी सुस्थापित जगह के साथ पूरा–पूरा न्याय करती हैं।

हम हुए जब–जब भी मरूथल जिंदगी के दौर में
तुमको देखा बनते बादल इसलिए तुम चाप हो।

गुप्त जी द्वारा रचित साहित्य आने वाले समय में अपनी अलग छटा लिये हमेशा–हमेशा याद रखा जायेगा तथा हर नया कवि इस शैली को अपनाने के लिये उत्सुक रहेगा। भले ही शारीरिक रूप से वह वर्तमान नहीं है परन्तु उन जैसा मनस्वी साहित्यकार काल स्तम्भ पर हर युग में अपनी ध्वजा लिये सजग प्रहरी की भांति साहित्य सेवा करता मिलेगा।

(५२, हरीनगर, अलीगढ़)

—डॉ० ब्रज नन्दन वर्मा

हर कोई लाचार हमारे देश में ।
हाथ हुए बेकार हमारे देश में ।।
किस–किसको दें दवा, करें उपचार हम ?
खाट—खाट बीमार हमारे देश में ।।
भाई से भाई के रिश्ते मकसैले मैले मिलते ।
जहर हो गया प्यार हमारे देश में ।।
जले भला कैसे बत्ती बिजली के खम्भों पर ।
टूट गया हर तार हमारे देश में ।।
आज अहिंसावादी आदी हिंसा के ।
हाथों में हथियार हमारे देश में ।।

—प्रकाश सूना

तेवरी

भट्टियों में एक दिन तुम जिस्म जलते देखना,
बस्तियों को फिर नये चेहरे बदलते देखना ।
जुल्मतों के पर्वतों पर आज ठहरी बर्फ है,
आएगा सूरज यकीनन हिम पिघलते देखना ।
डगमगा सकती नहीं हैं राह की बाधा तुम्हें,
खुद-ब-खुद इन कंटकों को तुम विचलते देखना ।
हो सके तो जिन्दगी को एक ठोकर मार दो,
खौफ का बेदर्द साया तुम दहलते देखना ।
मंजिलों की ओर 'सूना' तू बढ़ा अपने कदम,
बुझ गयी जो आग दिल से, कल सुलगते देखना ।

—ज्ञानेन्द्र साज

खाली झोली कैसी होली ?
नहीं ठिठोली कैसी होली ?
खाली बर्तन लखकर रोती,
रधिया भोली कैसी होली ?
धन के कारण बेटी की ना,
उठनी डोली कैसी होली ?
निकट पड़ौसी ने जलवायी,
उसकी खोली कैसी होली ?
प्यार मुहब्बत में नफरत ये
किसने घोली कैसी होली ?

दानव ने की मानवता की,
धरती पोली कैसी होली ?
धर्म के हाथों इंसानों पर,
चलती गोली कैसी होली ?
राजनीति के हाथों छलती,
जनता भोली कैसी होली ?
तार–तार है भारत माँ की,
चूनर–चोली कैसी होली ?

Scanned by CamScanner

पठनीय-पत्रिकाएँ

१–अभिनव प्रसंगवश, स. डॉ.अमिताभ, बापू नगर, बैंक कॉलोनी, अलीगढ़

२–जर्जर कश्ती, सं. ज्ञानेन्द्र साज, १७/२१२ जयगंज, अलीगढ़

३–भारतीय वार्तालाप, सं० नन्दलाल नवल, बंसलाल तिवारी चाल, रूम नं० ७ टेक्नीकल एरिया, मरोल पाइप लाइन, अंधेरी (पूर्व) मुँबई

४–मरूगुलशन, सं०अनिल अनवर, ३३, व्यासकालोनी, एयरफोर्स, जोधपुर

५–सम्यक, सं० मदन मोहन उपेन्द्र, ए-१० शान्ति नगर मथुरा (उ०प्र०)

६–भारती, मुम्बई हिन्दी विद्यापीठ, उद्योग नगर, भागोजो कीर मार्ग, माहिम मुम्बई-४०००१६

७–पर्यावरण, सं. डॉ.खुशालसिंह पुरोहित, ११० धानमडी, रतलाम-४५७००१

८–मारवाड़ी डाइजेस्ट, सं०रतन जैन, ज्ञानभारती मार्ग, पडिहारा राज.

९–मंदाकिनी, सं० रामावतार अनुरागी, ग्रा. व पो. रानी जि. बेगूसराय

१०–अदबीमाला, सं० कश्मीरी लाल चावला, ८२२, कच्चा फिरोजपुर रोड, मुक्तसर–१५२०२६

११–भाव बीथिका, सं.मेघासिंह चौहान, गोबिन्दपुरी, चन्दक-२४६७२१ बिजनौर

१२–यू.एस.एम. पत्रिका, सं० उमाशंकर मिश्र, ६८ तुराबनगर, गाजियाबाद

१३–गुदगुदी, सं० विश्वम्भर मोदी, अनुकम्पा, शिवाजी नगर, सिबिल लाइन्स, जयपुर–३०२००६ (राज०)

धारा १२१ ए के अन्तर्गत — बुक पोस्ट/मुद्रित सामग्री

सेवा में,

श्री..

....

....

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक रमेशराज के लिए कजली प्रिन्टर्स, जयगंज, अलीगढ़ द्वारा मुद्रित व सार्थक सृजन प्रकाशन, १५/१०९, ईसानगर, निकट–थानासासनी गेट, अलीगढ़से प्रकाशित। सम्पादन/संचालन–अवैतनिक

Scanned by CamScanner